प्रवचन नं. २२ गाथा-६ ता. १-७-७८ शनिवार जेठ वदि-११ सं.२५०४

जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से अग्नि को दहन अर्थात जलानेवाली कहा जाता। अग्नि, जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अग्नि को 'दहन' - ऐसा कहा जाता है, (- ऐसा) लगे कि पर को जलाती हो - ऐसा कहने में आता (है) (क्या कहा ?) कहा जाता है, तो भी दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं। यह अग्नि जो दाहरूप हुई, परंतु यह कहीं जलने योग्य पदार्थ के कारण, अग्नि उस आकाररूप हुई - ऐसा नहीं। आहाहा ! - ऐसा है !

यह अग्नि स्वयं ही अपने स्वभाव से, स्वयं को प्रकाशित करती हुई और पर को प्रकाशित करती हुई स्वयं ही परिणमती है, अग्नि, अग्निरूप। यह जलाती है, उसके आकाररूप हुई अग्नि, इसलिये इतनी पराधीनता हुयी - ऐसा नहीं। अग्नि, स्वयं ही स्वयं के आकाररूप परिणमित हुई है।

'***ज्ञेयाकार हुआ, यह ज्ञानाकार स्वयं का है***'। - ऐसा है न ? तो भी दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं 'इसीप्रकार, ज्ञेयाकार होने से, ज्ञायक जाननेवाले स्वभाव (ने) स्वयं को जाना और दूसरे पदार्थों के आकाररूप ज्ञान परिणमा ज्ञेयाकार होने से उस भाव को, उस जाननेवाले भाव को ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। 'जाननेवाला' है - ऐसा प्रसिद्ध है।' **'तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं'** 'जाननेवाला' जानने योग्य के आकाररूप हुआ ज्ञान, फिर भी ज्ञेयपदार्थों के कारण यह ज्ञान की पर्याय हुई - ऐसा नहीं है। आहाहा ! यह तो ज्ञानाकाररूप परिणमन ही स्वयं का इस जाति का है। स्व को जानता है और को जानने की पर्याय हुई, यह स्वयं से हुई है, रागादिक परवस्तु है इसलिये यहाँ राग का ज्ञान उसरूप हुआ - ऐसा नहीं है। आहाहा ! यहाँ तक तो आया था।

'कारण कि ज्ञेयाकार अवस्था में'... जो ज्ञान है यह जो ज्ञेय जानने योग्य पदार्थ के आकाररूप अवस्था में... यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ, यह तो ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ है, पररूप ज्ञात हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा ! जाननेरूप क्रिया के समय, ज्ञेय को राग को जानने पर भी यह राग के आकाररूप ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं, उसके कारण नहीं। यह तो स्वयं का स्वपर प्रकाशक स्वभाव है, स्व को प्रकाशित किया है और राग को प्रकाशता है, यह स्व की प्रकाशशक्ति के कारण प्रकाशित करता है। यह राग के कारण पर को प्रकाशता है ? - ऐसा ज्ञेयाकार ज्ञेय के कारण अशुद्धता या पराधीनता हुयी - ऐसा नहीं है। आहाहा !

- ऐसा है। न्याय का तत्त्व सूक्ष्मबहुत। आहाहा ! है ?

`ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ' देखो ? यह राग का ज्ञान हुआ - ऐसा कहना यह व्यवहार है। यह राग संबंधी का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान अपना हुआ है। आहाहा !

(श्रोता :- अपना ज्ञान कहना यह भेद हुआ न ?) भेद है, इतना कर्त्ता, कर्म सिद्ध करना है न ? क्योंकि यहाँ तो पर्याय को कर्त्ता सिद्ध करना है। स्व को जाननेवाला ज्ञान और पर को जाननेवाला, ज्ञान - ऐसा स्वपर प्रकाशक ज्ञान, वह इस ज्ञायक का कार्य है, कर्म है, आत्मा उसका कर्त्ता है। राग है... उसका यहाँ ज्ञान हुआ इसलिए राग कर्ता है और ज्ञानकार या राग के आकाररूप ज्ञान वह राग का कार्य है - ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है बापू ! आहाहा ! शुकनलालजी ! यह शुकन की बात चलती है। आहाहा !

आचार्यों ने - ऐसा कहा था न ? कि हमारा और पर का मोह नष्ट करने के लिये मैं कहूँगा। आहाहाहा ! - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से निकाला (कहा) जैसे स्वयं निकाला तीसरे श्लोक में, कि मैं यह टीका करता हूँ, आचार्य हूँ, परंतु अभी अशुद्धता का अंश अनादि का है, आहाहा ! तब इस टीका के समय... लिखा - ऐसा है कि टीका से... परंतु उसका अर्थ यह है कि टीका के काल में हमारा लक्ष्य (जोर) द्रव्य ऊपर है, उसके जोर से अशुद्धता टलेगी - ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं कि मैं जो यह समयसार कहूँगा, वह अपने भाव और द्रव्य स्तुति से कहूँगा और भाववचन एवं द्रव्यवचन से कहूँगा। आहाहा ! सामनेवाले के द्रव्यवचन और द्रव्य स्तुति नहीं कही, सामनेवालों में तो अनंत सिद्धों की स्थापना की है। यह स्थापित किया है (अर्थात कि) जो स्थापित करता है, उसने वह स्थापा है - इसतरह कहने में आया है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि मैं यह `वंदितु सव्वसिद्धे' सर्व सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापा है, हमने उसका अर्थ `वंदितु सव्वसिद्धे' क्योंकि ध्येय जो साध्य जो आत्मा उसके स्थानपर सिद्ध है, इसलिये सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात कि सिद्धों को (जो) मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ, यह हमारी पर्याय, स्वयं सिद्ध दशा को प्राप्त होगी और सिद्ध - ऐसा मेरा स्वरूप, पर्याय उस तरफ जायेगी ही, इसलिये मैं उसे वंदन करता हूँ। इसलिये हमने हमारी पर्याय में उसे स्थापित किया है। आहाहा !

और श्रोताओं भी... सभी श्रोता नहीं (परंतु) जिसने अपनी ज्ञान की पर्याय में अनंता सिद्धों को स्थापित किया - ऐसा कहा, परंतु यह (श्रोता स्वयं) स्थापित करे

जब, आहाहा ! उसकी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था में, इसमें मैंने कहा, यह उसने सुना, सुनकर के उसकी पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित करे, अर्थात कि राग से भिन्न होकर ज्ञान की पर्याय में स्थापित करे, उसका लक्ष्य जिसप्रकार अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाला, स्वयं को जाने - ऐसा कहा, इसप्रकार अनंता सिद्धों को जिसने पर्याय में स्थापित किया, उसने अनंता सिद्धों को पर्याय में जाना। आहाहा !

एक समय की ज्ञान की पर्याय ते अनंत सिद्धों को जाना यह तो एक अरहंत को जाना कहो कि अनंत अरहंत को जाना कहो, अनंत सिद्ध को जाना कहो कि एक सिद्ध को जाना कहो, सभी एक ही है। आहाहा ! यह अनंत सिद्ध जो (हमारी) अल्पज्ञ दशा में, अनंत जो सर्वज्ञ है, यह स्थापे हमने अपने में यह तो हमारी बात रही, हमने स्थापित किया परमें परंतु यह (स्वयंमें) स्थापे तब परमें स्थापे - इसप्रकार व्यवहार कहा जाता है। आहाहा !

उसकी अल्पज्ञदशा में अनंतसर्वज्ञों को वन्दन किया है अर्थात स्थापित किया है। आहाहा ! आहाहा ! यह अनंत सिद्धों को जो पर्याय जाने एवं स्थापित करे वह पर्याय विवेक करके द्रव्य तरफ ढ़ले बिना रहे नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बातें हैं बहुत गंभीर। गाथायें जैसे जैसे गहराई में जाते हैं उसका भाव बहुत सूक्ष्म (भासित होता है) बहुत !

- ऐसा श्रोता जो है कि जिसने पर्याय में अनंत सिद्धों को स्वयं स्वयं से स्थापित किया है। `हमने स्थापा है' यह तो निमित्त से (कथन) है। आहाहाहाहा ! ऐसे श्रोताओं को सिद्धपना... अपना स्वरूप है उसकी दृष्टि होती है, और वह श्रुतकेवली एवं केवली के द्वारा कहा हुआ है, तब वह जीव भी श्रुतकेवली होगा ही, श्रुतकेवली अर्थात समकिति। जिसने अनंत सिद्धों को अपनी अल्पज्ञ पर्याय में स्थापित किया है... अरे ! बापू यह कैसी बात है ? आहाहा !

जिसकी एक समय की अल्पज्ञ पर्याय, (छद्मस्थ की) भले असंख्य समय उपयोग हो, इसमें अनंत सिद्धों का ज्ञान करे और पर्याय में स्थापे अर्थात कि रखे, आहाहा ! जिसकी पर्याय में अनंता सिद्धों रहे... आहाहाहाहा ! - ऐसा जिसने स्वयं को (स्थापित) किया ऐसे श्रोताओं को यहाँ लिया है। आहाहाहा ! वैसे तो अनंतबार भगवान (अरहंत) के पास सुना, यह बात नहीं है। भगवान के पास तो अनंतबार सुना है। आहाहा ! परंतु जो श्रोता, अपनी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था होनेपर भी अनंत सर्वज्ञों सिद्धों को अल्पज्ञान में स्थापा, रखा है। आहाहाहा ! उसका लक्ष्य और दृष्टि द्रव्य ऊपर जायेगी और उसके लक्ष्य के कारण सुनेगा तो उसकी अशुद्धता ढल जाएगी, सुनने

के कारण नहीं। समझ में आया कुछ ?

और मेरा मोह भी - ऐसा लिखा है भाई, अनादि का मेरा मोह - ऐसा लिखा है प्रथम गाथा में उसप्रकार लिखा है, ***जिसप्रकार तीसरे श्लोक में उस प्रकार लिखा है कि अनादि से कलुषित परिणाम हमारे में है। आहाहा ! आचार्य हूँ परंतु है। आहाहा ! एक तरफ - ऐसा कहना कि सम्यग्दृष्टि को राग है ही नहीं दुःख है ही नहीं - वह तो किस अपेक्षा से ? अनंतानुबंधी एवं मिथ्यात्व की अपेक्षा से (सम्यग्दृष्टि को) दुःख और राग नहीं। आहाहा !***

यहाँ तो आचार्य स्वयं कहते हैं, अरे ! कुन्दकुन्दाचार्य इस गाथा के अर्थ की टीका करते (अमृतचन्द्राचार्य) स्वयं कहते हैं। यह मोह कितने समय का है ? अनादि का है। हे भाई ! पहली गाथा में कहा है कि हमारा मोह अनादि का है। आहाहाहाहा ! यह बात तीसरे कलश में अमृतचन्द्राचार्य ने ली है, आहाहा ! यह मोह... हमारे में आनंद का अनुभव है, परंतु उसके साथ कुछ राग, अनादि का है, यह अनादि का है, गया था फिर हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा ! श्रीकुन्दकुन्दाचार्य की गाथा की टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य इसतरह कहते हैं, कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य - ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा ! प्रभु क्या तुम इनके ज्ञान में, हृदय में बैठ गये हो ? (क्यों)कि ऐसी वस्तु की स्थिति है - ऐसा हम कहते हैं। आहाहाहा ! अपना (आत्मा) भगवान अरहंत के एक के द्रव्यगुणपर्याय को जाने, तब वह जाननेवाले आत्मा को जाने - ऐसा कहा, तब यह तो अनंत सिद्धों को पर्याय में जाने, अर्थात कि स्थापित करे, उसे स्व के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन हुये बिना रहे नहीं। आहाहाहा ! और वह श्रुतकेवली... अर्थात समकिति। श्रुतकेवली अर्थात वह विशेष ज्ञान नहीं परंतु यह श्रुतकेवली होगा और फिर केवली होगा। आहाहाहाहा ! गजब बात है न !!

यह सिद्धांत कहलाये, एक-एक श्लोक की थाह आये नहीं, उसकी गंभीरता संतो की दिगम्बर मुनी... आहाहाहा ! उनकी वाणी उस वाणी में गंभीरता और गहराई का... अंत न मिले !

यहाँ कहते हैं, ***जब अपने आत्मा को हमने 'ज्ञायक' कहा और ज्ञायकरूप से 'ज्ञायक' ज्ञात हुआ, तब 'जाननेवाले' को तो जाना परंतु 'जाननेवाला' कहते है तो दूसरों को भी जानता है - ऐसा हुआ। पर को जानता है भले - ऐसा कहें, परंतु वास्तव में तो पर है तो उसे जानते हैं - ऐसा नहीं।*** पर अर्थात् रागादिक हुआ उसे जानता है, यह रागादिक के कारण जानता है - ऐसा नहीं परंतु यह ज्ञान की पर्याय का स्वपरप्रकाशक सामर्थ ही ऐसा है कि स्वयं स्वयं को जानता है ज्ञायक ज्ञायक को..., यहाँ पर्याय की बात है हो ! द्रव्य को तो जानता है। आहाहाहा !

गजब बात है। वस्तु स्वरूप चिदानंदप्रभु `ज्ञायकरूप से तो ज्ञात हुआ' लक्ष्य में आया, दृष्टि में आया, ***परंतु उसे `जाननेवाला' कहते हैं तो स्वपरप्रकाशक (होने से) पर को जाननेवाला इसमें आया, इसमें तो स्व का जानना और पर का भी जानना इसमें आया ? तब कहते हैं `पर को जानना यह इसमें नहीं आया (परंतु) परसंबंधी का ज्ञान स्वयं को स्वयं से हुआ है, ऐसे `ज्ञायक' को ज्ञानपर्याय ने, ज्ञान से जाना, यह जाननेवाले की पर्याय उसने जानी।*** समझ में आया ? बहुत कठिन काम बापू ! मार्ग - ऐसा मार्ग है वीतराग सर्वज्ञ का। **`सर्वज्ञ नो धर्म सुसर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी, अनाथ एकांत सनाथ थाशे, ऐना विना कोई न बाह्य स्हाशे।** आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि हमारा और तुम्हारे मोह के नाश के लिये, अहाहाहाहा ! प्रतिज्ञा बद्ध ! इतना बड़ा प्रभु, अपने मोह के नाश के लिये तो भले... अस्थिरता है (अतः कहो) परंतु... श्रोता के ? परंतु श्रोता को हमने सिद्ध कहा है न ? अनंत सिद्धो को इन्होंने पर्याय में स्थापित किया है एवं स्वयं (को भी)। आहाहा ! (श्रोता :- स्वयं को स्थापित किया है) हमने स्थापित किया यह बात तो हमने की। आहाहा ! एक समय की अल्पज्ञ पर्याय में अनंत सिद्धों को स्थापित किया। यह पर्याय अंदर झुककर द्रव्य तरफ ही जाती (है)। इतनी पर्याय में अनंत सर्वज्ञों को स्थापित किया..., रखा..., आदर किया, सत्कार्य किया..., स्वीकार किया और वह एक समय में, अनंतसर्वज्ञों को जाना। उस समय की पर्याय को जानकर उसे जानता है न ! आहाहा !

उसका आत्मा उसे ज्ञायकरूप तो ज्ञात हुआ, परंतु यह `ज्ञायक' है अर्थात कि `जाननेवाला' है - ऐसा कहकर पर को जानता है - ऐसा जो आता है, तब पर के आकाररूप ज्ञान हुआ वह पर के कारण हुआ - ऐसा नहीं। धर्मी को भी अभी राग आता है न राग का ज्ञान होता है,... बारहवीं गाथा में कहेंगे, **`जाना हुआ प्रयोजनवान'** भाषा तो चारों तरफ से एक अविरोध बात को सिद्ध करती है। आहाहा !

इस ज्ञायकता में जो राग-व्यवहार आया और ज्ञात हुआ, वह राग है उसे यह जानता है, एवं राग है इसलिये यहाँ राग का ज्ञान, ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग अर्थात साधारण व्यक्ति बिचारा क्या करे ? वीतराग परमेश्वर, त्रिलोकनाथ अनंत जैन परमेश्वरों का यह सभी कथन है। एक मुनि का कहो कि अनंत तीर्थंकरो का कहो कि अनंत संतों का कहो, आहाहा ! और मुनि तो जिन, जिनको पर्याय में तीन कषाय का अभाव होकर जिनदशा प्रगटी है, आहाहा ! उसे मुनि कहते हैं। वह मुनि कहते हैं कि `मैं इस समयसर को कहूँगा' यह `कहूँगा' इसमें तो विकल्प है न ? विकल्प है परंतु हमारा वजन वहाँ नहीं हमारा तो यहाँ स्वतरफ जोर (है) एवं उसके लक्ष्य से बात वहाँ कहेंगे, हमारा वजन वहाँ

स्वभाव ऊपर बढ़ेगा एवं अशुद्धता टल जायेगी, इसीप्रकार सुननेवालों को भी अनंत सिद्धों को जिसने स्थापित किया, उनको... स्व के लक्ष्यपूर्वक सुनते हैं और पूरी बात आयेगी इसमें, इसलिये उसको भी स्वलक्ष्य होकर मोह टलेगा और अस्थिरता भी उसकी टलकर और प्रथम श्रुतकेवली होगा अर्थात समकिति होगा। श्रुतकेवली द्वारा कहा हुआ है, और यह श्रुतकेवली स्वयं होंगे अर्थात सम्यग्दृष्टि होंगे और बाद में केवली होंगे। आहाहा ! कहो शकुनलालजी ! इस गाथा का - ऐसा अर्थ है। अंत आये नहीं - ऐसा है। आहाहा ! दिगम्बर संत अर्थात केवली के मार्ग पर चलनेवाले, शेष सभीने कल्पना से बातें की है। आहा ! इसके तो एक-एक शब्द के पीछे भावों में कितनी गंभीरता है।

कहते हैं कि भले हम `ज्ञायक' कहते हैं और हमने ज्ञायक को जाना और `जाननेवाले' को भी जाना अब उसे जाननेवाला है तो पर का भी जाननेवाला है - ऐसा साथ में आया, स्वपर प्रकाशक है न ? तब पर का जाननेवाला है अतः पर को जानता है ! यह पर है उसके आकार का ज्ञान हुआ (तो) जैसा पर है उस स्वरूप में ज्ञान हुआ, तब इतनी तो ज्ञेयकृत अशुद्धता आयी कि नहीं ? इतनी ज्ञेयकृत प्रमेयकृत पराधीनता आयी कि नहीं ? तो कहते है कि नहीं। आहाहाहा ! **यह तो राग के ज्ञान के समय, शरीर के ज्ञान के समय, वह ज्ञान ज्ञायकपने की पर्यायरूप ही ज्ञात हुआ है,** यह राग की पर्याय एवं राग से ज्ञान हुआ है - ऐसा जाना नहीं। आहाहा ! कहो, सुरेन्द्रजी ! है ऐसी बातें ? आहाहा ! अरे प्रभु ! तुम्हें खबर नहीं भाई ! आहाहा ! तुम्हारा द्रव्य और उसकी पर्याय इसका सामर्थ्य कैसा है, आहाहा ! देवीलालजी ! कहाँ बैठे वहाँ, आओ यहाँ आओ। समझ में आया ? आहाहा !

हम तो कहते हैं कि राग और शरीर एवं जो कुछ दिखता है उस समय उनके आकाररूप ज्ञान हुआ, अतः उसके कारण हुआ - ऐसा नहीं। हमारे ज्ञान का स्वभाव ही - ऐसा है कि स्व को जानते समय पर को जानने की पर्याय स्वयं से अपने में होती है, उसे हम जानते (है)। आहाहाहा ! अरे प्रभु उसकी वाणी तो देखो ! आहाहा ! यह संतो की वाणी साक्षात मिले और यह आहा..हा ! गजब बातें है न !! यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप में जो ज्ञात हुआ देखा! ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप यह ज्ञान की पर्यायरूप ज्ञात हुआ है, ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, पर की पर्याय अपेक्षा ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा !

भाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है बापू और जिसका फल में अनंत संसार का अंत। आहाहा ! अनंत संसार का अंत और अंत बिना की पर्याय सादि अनंत प्रगटे। आहाहा ! बापू ! मार्ग कोई अलौकिक होता है। ***आहाहा ! यह ज्ञेयाकार अवस्था में, है ? यह***

ज्ञेय-राग को जानने की अवस्था में भी ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ है, यह ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, राग की पर्यायरूप से ज्ञात हुआ है - ऐसा है नहीं। आहाहा !

है न सामने पुस्तक है ? आहाहा ! ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं अर्थात ? राग को एवं उस समय जो शरीर की क्रिया हो, उसप्रकार ज्ञान स्वयं परिणमे एवं जाने, फिर भी यह ज्ञेयकृत की अशुद्धता पराधीनता ज्ञान के परिणमन में नहीं। आहाहा ! ***यह ज्ञान का परिणमन जो हुआ वह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ, `यह जाननेवाला ज्ञात हुआ है' इसमें जानी गई ऐसी वस्तु ज्ञेय नहीं हुयी। जो ज्ञात हुई है यह वस्तु, ज्ञात नहीं हुई। यह `जाननेवाला ज्ञात हुआ है' वहाँ आहाहा ! गूढ़ बातें है भाई !*** आहाहा ! ***अलौकिक चेतनस्वरूप ही अलौकिक है बापू !*** आहाहा !

उसकी एक समय की पर्याय में सर्वज्ञ को स्थाप कर... आहाहा ! गजब काम किया है न ? (संसार से) उठा लिया है, जिसने अनंत सिद्धों को स्थापा, उसे संसार से उठा लिया है, आहाहा ! उसे हाँ ? अकेला श्रोता को नहीं। आहाहा !

जिसने अनंता सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित किया और उसको ज्ञान का, ज्ञायक का ज्ञान हुआ वह ज्ञान राग को जो शरीर को जाने इसलिये उसे ज्ञेयकृत, प्रमेयकृत अशुद्धता नहीं हुई, यह तो ज्ञायक की ही पर्याय, उसे यह जानता है, यह राग के जानने के समय राग के आकार ज्ञान हुआ राग के कारण ज्ञान उस आकार रूप हुआ - ऐसा नहीं। उस समय ज्ञान ही अपने ज्ञानाकार होना पर्याय का स्वभाव था, इसप्रकार हुआ। तब उस समय राग ज्ञात हुआ नहीं, जाननेवाले की पर्याय, उसने जाना है, समझ में आया ? आहाहाहा !

वह `**ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ**' `वह' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी स्वयं ज्ञात हुआ है क्या कहा यह ? (फरमाओ) कि, यह ज्ञायक प्रभु स्वयं को ज्ञायकरूप से जब जाना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ज्ञात हुआ, उस समय जो ज्ञान में रागादिक परज्ञेय ज्ञात हो, उसी समय भी उसने राग को जाना है - ऐसा नहीं राग संबंधी का अपना ज्ञान, स्वयं से हुआ है उसे वह जानता है, ज्ञेयाकार के समय में भी अपनी पर्याय को जानता है और स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी दो बातें ली है न ? क्या कहा ? ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ `वही' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी दीपक की भांति स्वयं ज्ञात हुआ है `आहाहा !' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी जिसप्रकार ज्ञेयाकार के ज्ञान के समय भी ज्ञान की पर्याय (रूप) ज्ञात हुई है यह पर्याय उसकी `जाननेवाला जो है' उसकी पर्याय ज्ञात हुई है, इसीप्रकार स्वरूप प्रकाशन की अपेक्षा से भी, आहाहा ! उदाहरण

दिया है। `दीपक की भांति', कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना होने से... ज्ञायक ही है।

अर्थात ? स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता और अपने को जाना इसलिये स्वयं ही `कर्म' आहाहा ! यह पर्याय की बात है हो ! जाननेवाले को जाना और ज्ञेय को जाना यह जानना पर्याय का कार्य (है), ज्ञायक कर्त्ता, उसका यह कार्य है। यह राग-व्यवहार (को) जाना अतः व्यवहार कर्त्ता और जानने की पर्याय कर्म- - ऐसा कार्य नहीं। आहाहाहा ! कितना समाया है ?

वह कहता था कि हमने पन्द्रह दिन में समयसार पढ़ डाला ! बापा भाई, तुम्हारा प्रभु कौन है ? अरे ! उसे जानने के लिए भाई, आहाहा ! अरे ! अनंतकाल के परिभ्रमण में किसी दिन यह सच्चा प्रयत्न इसने किया ही नहीं। उलटे प्रयत्न को उसने माना कि हम कुछ कर रहे हैं, धर्म कर रहे हैं, हैरान होकर चार गतियों में भटकता है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जब सर्वज्ञरूप से स्थापा और जब उसे सर्वज्ञ स्वभाव का भान हुआ, आहाहा ! तब उसने स्व-जाननेवाले को तो जाना, **परंतु उसी समय पर को जाना है उस समय भी, जाननेवाले की पर्याय को ही यह जाना है।** `जाननेवाले की पर्याय रूपसे यह ज्ञात हुआ है' राग की पर्याय के रूप में जाना है - ऐसा नहीं। आहाहा !!

यह तो ग्रंथ सामने है, किस शब्द का अर्थ होता है ? आहाहा ! भगवान परमात्मा, उनकी वाणी और मुनियों की वाणी दोनों में फर्क नहीं। आहाहा ! मुनि तो आड़तिया होकर सर्वज्ञ की वाणी कहते हैं। भाई ! तुमने सुनी नहीं। आहाहा ! तुम कौन हो और तुम किसे जाननेवाले हो ? कि मैं ज्ञायक हूँ और मैं अपनी पर्याय को जाननेवाला हूँ। आहाहा ! ***यह ज्ञान की पर्याय वह हमारा कार्य है `कर्म', कर्म अर्थात कार्य और `कर्त्ता' मैं (हूँ)। वास्तव में तो, पर्याय `कर्त्ता' और पर्याय ही `कर्म' है। परंतु यहाँ ज्ञायक भाव कर्त्ता रूप सिद्ध करके, ज्ञान पर्याय उसका कार्य है - ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा ! वास्तव में तो वह ज्ञान की पर्याय उसका `कार्य' है और उस समय की पर्याय जो है वही उस पर्याय का कर्त्ता है। आहाहा ! पूरा द्रव्य है वह तो ध्रुव है उसे कर्त्ता कहना यह तो उपचार से है। आहाहा ! समझ में आया ? ध्रुव है वह तो परिणमता नहीं बदलता नहीं।***

बदलनेवाले की पर्याय जो ज्ञायक को जाननेवाली हुई वह पर को जानने के समय भी, स्वयं के ज्ञानरूप परिणमी (अतः) वह स्वयं ही `कर्त्ता' और स्वयं ही स्वयं का `कर्म' है राग `कर्त्ता' और यह ज्ञान की पर्याय उसका `कार्य' हो - ऐसा है नहीं। आहाहाहा ! इसके एक पदमें से बाहर आना कठिन लगे इतनी तो गंभीरता

है इसमें। आहाहा ! बापू ! तुम महाप्रभु हो भाई ! तुम महाप्रभु हो... और तुम्हारी पर्याय भी महाप्रभु की है जो ज्ञात हुआ है, उसकी यह पर्याय है, आहाहा ! यह प्रभु की (स्वद्रव्यकी) पर्याय है। यह राग की नहीं। आहाहाहा !

इस ज्ञान में स्व जहाँ ज्ञात हुआ और जहाँ जाना, उसी समय यह पर का जानना वहाँ होता है न ? कहते हैं कि यह पर का जानना हुआ यह पर के कारण जानना हुआ - ऐसा नहीं। यह जानने की पर्याय ही स्वयं, स्वयं के स्वपरप्रकाशकरूप परिणमने की ताकत से वह परिणमा है। इसलिये वह पर्याय कर्म है और वही पर्याय `कर्त्ता' अथवा तो भी जीव कर्त्ता कहा जाता है। आहाहा ! ***वास्तव में षट्कारक का परिणमन पर्याय में है, द्रव्य में षट्कारक की शक्ति है परंतु परिणमन नहीं। समझ में आया कुछ ?*** आहाहा !

इसलिये जिस ज्ञान की पर्यायने स्वयं को जाना, उस पर्यायने राग संबंधी स्वयं के ज्ञान के परिणमन को उसने जाना। व्यवहार का विकल्प उठता है, उसका जो ज्ञान होता है उस ज्ञान की पर्याय को स्वयं स्वयं से जानता है और वह स्वयं स्वयं से होती है। उसे जाननेवाली पर्याय व्यवहार से हुई नहीं, व्यवहार आया रागादिक उसका ज्ञान इसलिये उससे हुआ है ज्ञान ! उसमें ज्ञान कहाँ था ? राग में कहाँ ज्ञान था कि राग (जाने) आहाहा ! जिस ज्ञायक में ज्ञान भरा है प्रभु में, आहाहा ! उसका जब अंदर से जाननेवाला जागता है, तब जागनेवाला स्वयं और स्वयं को जानता है और जागनेवाला स्वयं की पर्याय को जानता है। `राग को जानता है' यह भी बात व्यवहार से कथन है। आहाहाहा ! कहो समझ में आया ?

`लो ! दीपक की भाँति' `कर्त्ता कर्म का अनन्यपना है' अन्यपना नहीं। कर्त्ता है वही कर्म है और कर्म है वही उसका कर्त्ता है। समझ में आया ? `होने योग्य' और `हुआ' दोनों अनन्य हैं। भिन्न-भिन्न नहीं। आहाहा ! कर्त्ता होनेवाला और कर्म हुआ, वह अनन्य है, वह दोनों एक ही वस्तु है। आहाहाहाहा ! `अनन्यपना होने से ज्ञायक ही है' स्वयं जाननेवाला, यह `कर्त्ता' इसलिये स्वयं कर्त्ता, आहाहा ! रागसंबंधी ज्ञान हुआ यह ज्ञान की पर्याय का कर्त्ता स्वयं है और उसका कर्म भी अनन्य उसमें है। आहाहा ! यह ज्ञान, राग को जानता है - ऐसा नहीं, और राग के कारण ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा !

ऐसी व्याख्या है अब, साधारण लोग बिचारे सम्प्रदाय (के पक्ष) में रुके हों, एवं समय मिले नहीं कभी पूरे दिन (में), दो घड़ी मिले वहाँ शेष बाईस घण्टे तो पत्नी, बच्चे और धंधा तथा पाप में पूरी जिंदगी जाये, आहाहा ! अरेरे ! उसमें दो घड़ी सुनने जाये, वहाँ मिले - ऐसा कि ठिकाने बिना का, सत्य के विरुद्ध बातें मिलें।

आहाहा !

`यह ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ,' वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ज्ञायक ही है। है न अंतिम शब्द ? बीच में इतना छोड़ दो थोड़ा... `दीपक की भांति कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना होने से,' परंतु स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है। वह तो दृष्टांत है। आहाहाहा !

किसी ने - ऐसा जाना हो कि हमने समयसार सुना है, इसलिये इसमें कुछ नवीनता न हो - ऐसा नहीं प्रभु। आहाहा ! यह नयी वस्तु है बापू, भगवान। आहाहा !

क्या कहा? `स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता', राग की, शरीर की क्रिया हुई उसका यहाँ ज्ञान हुआ, यह ज्ञान का कार्य स्वयं का है। यह (ज्ञान) कार्य राग और शरीर का नहीं। इसलिए वह कार्य स्वयं ज्ञान की पर्याय का, ज्ञान का है, वह कर्त्ता और स्वयं को जाना अतः स्वयं कर्म। आहाहा ! पर्याय की बात है हो यहाँ। जानने में आयी है पर्याय, यह पर्याय उसका कार्य... राग जानने में आया है - ऐसा नहीं, उसीप्रकार राग से यहाँ ज्ञानरूप कार्य हुआ - ऐसा नहीं, यह राग का कार्य नहीं, यह ज्ञायक का कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

एक साधारण सरकार के नियम गहन होते है, यह तो तीनलोक के नाथ (का कानून है) आहाहा ! सर्वज्ञस्वरूप ! उसके नियम तो कैसे हों बापा ! आहाहा ! एक-एक गाथा में कितनी गंभीरता है।

स्वयं जाननेवाला अतः स्वयं कर्त्ता, किसका जाननेवाला ? स्वयं की पर्याय का। केवली लोकालोक को जानते हैं - ऐसा भी यह नहीं। केवली अपनी पर्याय को जानते हैं। आहाहा ! पर्याय उसका कार्य है और कर्त्ता उसका ज्ञान स्वरूप है, अथवा भले पर्याय है। आहाहाहा ! यह लोकालोक है, इसलिये यहाँ केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

यह प्रश्न तो तिरासी में उठा था। ... सम्वत् १९८३, कितने वर्ष हुये ? इक्यावन, इक्यावन वर्ष पहले प्रश्न उठा था, पचास और एक, कि यह लोकालोक है, अतः केवलज्ञान है कि केवलज्ञान स्वयं से है, लोकालोक के कारण नहीं। यह एक प्रश्न था। सेठ (जी) ने - ऐसा कहा कि लोकालोक है तब इसका यहाँ ज्ञान हुआ है। तब उसे वीरजीभाई ने मना किया कि - ऐसा नहीं है। फिर दोनों नीचे आये, और हमसे पूंछा। हमने कहा बापू - ऐसा नहीं है। केवलज्ञान तो ज्ञान स्वयं से होता है। केवलज्ञान के कार्य का कर्त्ता आत्मा एवं कर्म केवलज्ञान, लोकालोक कर्त्ता तथा केवलज्ञान `कर्म' (- ऐसा नहीं) इतने अधिक शब्द तब नहीं थे उस समय, परंतु लोकालोक है अतः ज्ञान की पर्याय हुई है - ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

अरेरे ! एक भी बात को सर्वज्ञ के न्याय से बराबर जाने तो... एक 'भाव' जाने तो सभी 'भाव' यथार्थ ज्ञात हो जायें, परन्तु एक भी भाव को समझने का ठिकाना नहीं है। आहाहा ! अरेरे जिंदगी पूरी होने को आयी तब इसमें क्या करना वह रह गया, किया... ढेर अकेला पाप का। ***पुण्य का पता न मिले कि भाई चार-चार घण्टे तक सच्चा सत् समागम करना। सत्समागम भी किसे कहना उसकी भी अभी समझ नहीं की। आहाहा ! और सत्शास्त्रों का चार-चार घण्टे बांचन करना हमेशा, तब पुण्य तो बंधे, उसका भी ठिकाना नहीं धरम तो करे नहीं।*** आहाहाहा ! सत्शास्त्र और सत्समागम, दोनों का परिचय रहे, चौबीस घण्टे में चार घण्टे तो भी पुण्य बंधे, यह धरम नहीं। धरम तो राग से भिन्न होकर सर्वज्ञता स्वरूप मेरा है - ऐसा अंतर में दृष्टि करके अनुभव करे तब उसे सम्यग्दर्शन हो। आहाहा ! समझ में आया ?

'जैसे दीपक घट पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में दीपक है' दीपक जो है न ? यह घट और पट अर्थात वस्त्र उसे प्रकाशते समय भी दीपक तो दीपक ही है। यह दीपक जिन्हें प्रकाशता है उसरूप हुआ है ? आहाहाहा ! दीपक घट-पटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है क्या कहा यह ? दीपक घट पटादि की अवस्था को प्रकाशित करते समय दीपक तो दीपकरूप है। यह घट पट को प्रकाशित करते समय भी घट पटादिकी अवस्थारूप कहीं दीपक नहीं हुआ। आहाहा ! और घट पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक के प्रकाश के कारण प्रकाशित करता है। आहाहाहा ! दीपक घट-पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है और स्वयं को, अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है। इसप्रकार 'ज्ञायक' ***राग और पर को जानने के समय भी ज्ञायक की पर्याय तो ज्ञानकी ही है, और स्वयं को प्रकाशने के समय भी यह ज्ञान की ही पर्याय है।*** आहा !

पर को जानते समय यह पर्याय पर को कारण हुई है - ऐसा नहीं। घट पट को प्रकाशता है प्रकाश, अतः प्रकाश घट-पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक का स्वयं का प्रकाशक स्वभाव है, घट पट को प्रकाशित करते समय भी दीपक तो दीपक ही है, और अपनी ज्योति को प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपक ही है।

बहुत सूक्ष्म है बापू ! एक घण्टे में कितना आया, फुरसत न मिले, अवकाश न मिले, पूरे दिन पाप के कारण और ***शरीर की सुरक्षा के लिये करना हो तो पूरे दिन, उलझा रहे ? उसका - ऐसा करना... इसका - ऐसा करना... उसका***

- ऐसा करना... फिर भी (जो) होना होता है वह होता इसके करने से कुछ नहीं होता। आहाहा ! और यह तो (सम्यग्दर्शन) तो पुरुषार्थ से होता ही है। आहाहा !

दीपक, घट अर्थात घड़ा और पट वस्त्रादिक कोयला कि नाग उसे प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपकरूप रह कर प्रकाशित करता है। पररूप होकर वह प्रकाशित करता है ? और पर को प्रकाशता है ? यह तो दीपक दीपक को प्रकाशित करता है और अपने प्रकाश को भी प्रकाशित करते समय स्वयं दीपक दीपक को प्रकाशित करता है।

इसप्रकार भगवानआत्मा जाननेवाला जानने में आता है उस अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ही स्वयं रहा है। पररूप हुआ नहीं और (वह) अवस्था पर के कारण हुई नहीं। आहाहा ! और स्वयं जानते समय यह तो स्वयं ही अपनी पर्याय हुई। आहाहा ! अब - ऐसा सभी याद रखना ? - ऐसा मार्ग प्रभु का बापू और यह मार्ग जिनेश्वरदेव के अलावा कहीं है नहीं। तीनलोककेनाथ तीर्थंकरदेव... आहाहा !

परंतु बातें बहुत सूक्ष्म हैं प्रभु, यह कहीं पैसा खर्च कर डाले करोड़ दो करोड़ पांच करोड़, अतः धरम हो जाये, (- ऐसा नहीं) आहाहा ! शरीर की क्रिया कर डाले छह-छह महीना उपवास, शरीर सूखे (- ऐसा) उपवासादि करे, और धारणारूप अकेला क्षयोपशम पर को प्रभावित करनेवाली बुद्धि की बातें करे, परंतु अंतर क्या वस्तु है ? आहाहा ! उसे खोजने (पहचानने) यह नहीं जाता।

`अन्य कुछ नहीं' उसमें `ज्ञायक को समझना' अर्थात ? `जाननेवाला' भगवान ***स्व को जानते समय पर्याय में स्व को जाना, वैसी ही पर्याय में पर को भी जाना। यह पर को जाननेवाली पर्याय हुई, यह स्वयं से ही हुई है अर्थात वास्तव में तो अपनी पर्याय को उसने जाना है। आहाहा ! कारण कि पर्याय में कुछ ज्ञेय आया नहीं,*** घट-पट को दीपक प्रकाशित करता है इसलिये दीपक के प्रकाश में घट-पट कहीं आ गये नहीं कि दीपक के प्रकाश में वह कहीं प्रवेश किये नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? इसप्रकार भगवान चैतन्य दीपक चैतन्य चन्द्र प्रभु... - ऐसा जिसको अंतर में ज्ञान हुआ, राग से भिन्न होकर, ***सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है - ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वहाँ अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञ स्वभाव का भान हुआ, यह अल्पज्ञ पर्याय हुई वह सर्वज्ञ स्वभाव की है, यह ज्ञायक की पर्याय है उसे जाने और यह पर्याय पर को जाने, यह पर्याय भी ज्ञायक की पर्याय है। यह पर की पर्याय है और पर के कारण हुई है - ऐसा है नहीं।*** आहाहा ! एक बार मध्यस्थ होकर सुने तो..! सभी लोग आग्रह रखकर रुके हैं कि `इससे - ऐसा हो और इससे - ऐसा हो'... आहाहा ! व्रत करने से संवर हो एवं तपस्या करने से निर्जरा हो न ! आहाहा !

परंतु यह व्रत किसे कहना। निश्चय व्रत किसे कहना उसकी खबर न लगे। व्रत करे तो संवर हो और उपवास करें तो निर्जरा हो अरे भगवान ! यह व्रत रूप विकल्प व्यवहार के हैं यह तो पुण्य-बंध का कारण हैं और उपवास आदि जो विकल्प हैं (व्यवहाररूप) यह भी पुण्य-बंध का कारण है, यदि राग मंद किया हो तो ? वहाँ संवर-निर्जरा नहीं। आहा !

वहाँ तो - ऐसा भी कहा है न ? ३२० गाथा में, कि ***उदय को जानने के समय भी ज्ञान की पर्याय को जाने, निर्जरा के समय भी निर्जरा की पर्याय को जानता है यह निर्जरा करता नहीं।*** उदय को जानता है - ऐसा कहना, परंतु फिर भी यह राग को जानता है, वह ज्ञान की पर्याय हुई है वह तो उसे स्वयं को जानता है। निर्जरा के समय जानता है, यह भी निर्जरा की पर्याय जो ज्ञानरूप हुई है उसे यह जानता है बंध को जानता (है) बंध का जो ज्ञान हुआ है उस ज्ञान की पर्याय को जानते, मोक्ष की पर्याय को जाने, विपाक-सविपाक एवं अविपाक को जाने। आहाहा ! चार बोल लिए है न ? सविपाक-अविपाक, सकाम-अकाम। आहाहाहा !

दिगम्बर संतों ने तो गजब काम किया है उन्हें समझनेवाले विरले होते हैं। ऐसी बात अन्य कहीं नहीं है भाई! आहाहा ! उनकी गहराई की बातें... आहाहा ! - ऐसा यहाँ कहा है आहाहा !

और कर्त्ता-कर्म का अनन्यपना है - ऐसा कहा अर्थात क्या ? कि `कर्त्ता' अन्य और `कार्य' अन्य - ऐसा हो सके नहीं। `कर्त्ता' ज्ञान की पर्याय या आत्मा और उस पर्याय का कार्य रागादिक को जानना यह उसका कार्य - ऐसा नहीं। कर्त्ता-कर्म अनन्य होता है। अन्य-अन्य नहीं, वही कर्त्ता और वही कर्म होता है। आहाहा ! वही कर्त्ता और वही कार्य होता है। आहाहा ! राग को जानते समय, ज्ञान ज्ञानरूप हुआ उसका `कर्त्ता' भी ज्ञान और कर्म भी ज्ञान। यह राग का ज्ञान, यह राग कर्त्ता एवं राग का ज्ञान कार्य - ऐसा नहीं। आहाहा ! व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प उठा, तो उसका जो यहाँ ज्ञान हुआ वह उसके कारण (ज्ञान) हुआ, उसमें कहाँ ज्ञान था तो हुआ। ज्ञान तो यहाँ है। (आत्मा में) आहाहा !

स्वप्रकाशक ज्ञान... आता है न ? **स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी,** ***स्व प्रकाशक ज्ञेय और परप्रकाशक ज्ञेय, दोनों वस्तु ज्ञेय, ज्ञेय स्व और पर दोनों, फिर भी पर को जानते समय वह पर्याय स्वयं स्वयं से जानती है। (स्वयं को) आहाहा*** ! यह यहाँ सिद्ध करना है। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)